

सामाजिक परिवर्तन एवं विकास का समाजशास्त्र

सारांश

प्रस्तुत लेख में परिवर्तन की सार्वभौमिक प्रक्रिया तथा सामाजिक परिवर्तन के कुछ विशिष्ट स्वरूपों का वर्णन किया गया है। इसमें आर्थिक प्रगति को ही विकास का पर्याय न मानकर समन्वित आर्थिक-सामाजिक विकास पर बल दिया गया है। साथ ही, 'नियोजित विकास' एवं 'संपोषित विकास' जैसी अवधारणाओं पर भी प्रकाश डाला गया है जो कि संतुलित एवं स्थिर विकास हेतु आवश्यक है। भारतीय अर्थव्यवस्था में अपनाये गये समाजवादी मॉडल की ओर भी इंगित किया गया है।

मुख्य शब्द : उद्विकास, प्रगति, विकास, क्रान्ति, समन्वित आर्थिक-सामाजिक विकास, संपोषित विकास, समाजवादी मॉडल, नियोजन, सामाजिक इंजीनियरिंग।

प्रस्तावना

परिवर्तन प्रकृति का सार्वभौमिक नियम है, अतः समाज में भी परिवर्तन की प्रक्रिया स्वाभाविक ही है। वस्तुतः किसी भी ऐसे समाज की कल्पना असंभव है जो पूर्णतया स्थिर हो। **फिचर** के शब्दों में परिवर्तन, 'पूर्व अवस्था या अस्तित्व के प्रकार में अन्तर' है। सामाजिक परिवर्तन के संदर्भ में विविध सिद्धान्तों, कारणों, प्रतिमानों एवं स्वरूपों का विश्लेषण किया जाता है। इन सिद्धान्तों में विविधता के उपरान्त भी एक समान मूलभूत सिद्धान्त है, वह यह कि मूल्यों एवं सामाजिक-आर्थिक-राजनीतिक, सांस्कृतिक संबंधों और संरचनाओं में परिवर्तन को वास्तविक सामाजिक परिवर्तन माना गया है। **मैकाइवर** ने सामाजिक परिवर्तन के कुछ विशिष्ट स्वरूपों का उल्लेख किया है—

- उद्विकास (Evolution)
- प्रगति (Progress)
- विकास (Development)
- क्रान्ति (Revolution)

परिवर्तन जब क्रमिक गति से सरल से जटिल की ओर होता है, तो वह उद्विकास है। समाज के अंदर ही उद्विकास की मूल प्रेरक शक्ति विद्यमान रहती है, यद्यपि इसमें बाह्य भौतिक-सामाजिक कारणों का भी योगदान रहता है। कॉम्टे ने तीन चरणों, मार्क्स ने पाँच चरणों तथा स्पेन्सर ने दो चरणों में सामाजिक परिवर्तन के नियम का प्रतिपादन किया है। **प्रगति** की अवधारणा मार्क्स के बाद प्रचलित होती गई। प्रगति एक जीवन-मूल्य सूचक शब्द है; जब किसी एक विशिष्ट सामाजिक मूल्य के अनुरूप परिवर्तन की गति एवं दिशा निर्धारित होती है, तो उसे प्रगति कहते हैं। **मैकाइवर** ने बहुत पहले ही किसी एक स्वीकृत दिशा में परिवर्तन को प्रगति कहा था। प्रमुख समाजशास्त्री **टी.बी. बॉटोमोर** ने **विकास** को 'क्रमिक उन्मीलन' के रूप में स्पष्ट किया है अर्थात् किसी भी वस्तु की अधिकतम जानकारी। आधुनिक अर्थों में औद्योगीकरण, मशीनी तकनीक के व्यापक प्रयोग, कृषि संरचना में आमूल परिवर्तन अर्थात् समन्वित आर्थिक-सामाजिक विकास को ही विकास का पर्याय माना जा रहा है। परिवर्तन का चौथा स्वरूप **क्रान्ति** समाज की मूल संरचनाओं-सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक में आमूल तथा सीमित अवधि में परिवर्तन का सूचक है। 19वीं सदी में मार्क्स ने वर्ग-संघर्ष द्वारा जनक्रान्ति की अवधारणा दी थी।

नियोजित परिवर्तन, विकास और आधुनिकीकरण की अवधारणायें पिछले कुछ दशकों से मानवीय चिन्ता एवं विश्वव्यापी संवाद के केन्द्र में रहीं हैं। आर्थिक उदारीकरण एवं भूमण्डलीकरण के अनुभव के बाद यह स्पष्ट है कि गरीबी एवं उससे जुड़ी समस्याओं के प्रति अधिक संवेदनशील हुये बिना न जनतंत्र संभव है, न ही विकास। विकास के प्रश्न को सामान्यतः अर्थशास्त्र की दृष्टि से देखा जाता है परन्तु सकल राष्ट्रीय उत्पाद एवं राष्ट्रीय आय की वृद्धि को विकास मान लेना भ्रामक है क्योंकि सांस्कृतिक अस्मिता की अवहेलना तीव्र



अरुण कुमार

सहायक प्राध्यापक,
समाजशास्त्र विभाग,
राजकीय महाविद्यालय,
मॉट, मथुरा

प्रतिक्रियाओं को जन्म देती है।

फासीवाद, नाजीवाद तथा विश्व-युद्धों की विभीषिका से मुक्ति के लिये विकास की समस्या एक सार्वभौमिक विषय बन गई। इसी पृष्ठभूमि में विकास के अर्थशास्त्र तथा समाजशास्त्र, दोनों विषयों का उदय हुआ। समाजशास्त्री आर्थिक विकास को साधन और सामाजिक विकास को साध्य मानते हैं। **संयुक्त राष्ट्र संघ** के अनुसार, विकास का तात्पर्य है सामाजिक व्यवस्था, सामाजिक संरचना, संस्थाओं, सेवाओं की बढ़ती क्षमता— जो संसाधनों का उपयोग इस प्रकार से कर सके ताकि जीवन-स्तर में अनुकूल परिवर्तन आये।¹ विकास की अन्य परिभाषा के अनुसार, विकास का अर्थ है अच्छी आर्थिक वृद्धि तथा उचित आधुनिकीकरण। इस संदर्भ में विकास का नियोजन आवश्यक है। यद्यपि नियोजित विकास न कोई मन्त्र है, न ही जादू की छड़ी। यह तो अत्यन्त जटिल एवं संवेदनशील प्रक्रिया है, जिसकी सफलता हेतु अनेक स्थितियाँ आवश्यक हैं। प्रसिद्ध अर्थशास्त्री और समाज-वैज्ञानिक **गुन्नार मिर्डल**² ने एशियाई देशों के विकास की सफलता एवं असफलताओं का विस्तृत विवेचन अपनी पुस्तक **दि एशियन ड्रामा** में किया है। मिर्डल के अनुसार धन का पुनर्विभाजन आवश्यक है पर यह पर्याप्त नहीं। इसके अतिरिक्त, देश के अंदर आर्थिक मोर्चों पर शीघ्र भूमि सुधार तथा कृषि का आधुनिकीकरण भी आवश्यक है।

विकास के उद्देश्यों को पूरा करने के लिये होने वाले अनियन्त्रित औद्योगीकरण ने धरती और मानव के अस्तित्व पर ही खतरा उत्पन्न कर दिया है। इस संदर्भ में विकास की एक नई अवधारणा विकसित हुई है जिसे 'संपोषित विकास' (Sustainable Development) कहा जाता है। अर्थात् विकास की नीतियाँ तथा कार्यक्रम ऐसे हों जिनके कार्यान्वयन से न केवल विकास वरन् पर्यावरण तथा प्राकृतिक सम्पदा, वर्तमान एवं भविष्य में भी सुरक्षित रह सकें।

प्रस्तुत शोध-पत्र में अन्वेषणात्मक शोध-प्ररचना को आधार बनाते हुये, ऐतिहासिक एवं वैज्ञानिक पद्धति की सहायता से विषय-वस्तु के निष्पादन का प्रयास किया गया है। साथ ही पूँजीवादी एवं मार्क्सवाद से प्रेरित समाजवादी मॉडल के मिश्रित मॉडल की विशेषताओं को भी सम्मिलित किया गया है, जिसका प्रयोग भारत में योजनाओं के अंतर्गत किया जा रहा है। वस्तुतः विकास

की रूप रेखा के मूल में उत्पादन-प्रणाली तथा रोजगार के क्षेत्रों में विस्तार को प्रमुखता दी गई ताकि आर्थिक अवसरों के विस्तार के परिणामस्वरूप समृद्धि से वंचित निम्न समूहों को भी इसका लाभ मिल सके। परन्तु किसी भी विकासशील देश में आर्थिक समृद्धि का लाभ वंचित सामाजिक वर्ग को नहीं मिला है। भारत में भी नहीं, जहाँ आर्थिक विकास के कार्यक्रमों को योजनाबद्ध तरीके से लागू किया गया। अतः अब गरीबी-उन्मूलन, सामाजिक-आर्थिक असमानता की दूरी को कम करने तथा उत्पादन-वितरण प्रणाली को पूर्ण रोजगार प्राप्त करने के अनुकूल बनाने पर अधिक जोर दिया जा रहा है। अब सामाजिक विकास का अर्थ; मानव संसाधनों का विकास, संतुलित क्षेत्रीय विकास, शिक्षा, स्वास्थ्य आदि सेवाओं में विस्तार अर्थात् सम्पूर्ण सामाजिक व्यवस्था में गुणात्मक प्रगति माना जाने लगा है। इन सबके अतिरिक्त सांस्कृतिक स्वतंत्रता, सांस्कृतिक अस्मिता की रक्षा, अल्पसंख्यक समूहों के अधिकारों की सुरक्षा जैसे मुद्दे भी सामाजिक विकास में महत्वपूर्ण हो गये हैं। इसके लिये सामाजिक नीति अथवा व्यवहारिक सामाजिक इंजीनियरिंग को प्राथमिकता दी जान लगी है ताकि आर्थिक विकास से आगे संरचनात्मक परिवर्तन एवं विकास संभव हो सके।

संदर्भ—सूची

1. McIver, R.N. : 'Society,' MacMillan, 1950.
2. Myrdal, Gunnar : 'The Asian Drama,' Pantheon, 1970.
3. बॉटोमोर, टी.बी.: 'समाजशास्त्र' (हिन्दी अनुवाद), सामाजिक विज्ञान हिन्दी रचना केन्द्र, जयपुर, 1968.
4. मुकर्जी, आर.एन.: 'भारत में सामाजिक परिवर्तन,' विवेक प्रकाशन, दिल्ली 1985.
5. दुबे. एस.सी. : 'विकास का समाजशास्त्र,' वाणी प्रकाशन, 1996.
6. प्रसाद, गोपी कृष्ण : 'विकास का समाजशास्त्र,' रावत पब्लिकेशन्स, 1999.

फुटनोट्स

1. Fitcher, 'Sociology', p.340.
2. Mclver, 'Society'.
3. Mclver, 'Sociology', p.610-15.
4. T.B. Bottomore, 'Sociology', p-299.
5. WNDP Report, 1992.
6. Gunnar Myrdal, 'The Asian Drama'.